12.1

पारस

राजेन्द्रपाल वर्मा 'इन्द्र'

पारस

(काव्य संग्रह)

राजेन्द्रपाल वर्मा 'इन्द्र'

कटारा प्रकाशन

प्रथम संस्करण : 6 मई 2002 (500 प्रतियाँ)

कटारा प्रकाशन,
डी-46, मोतीनगर- III,
तरसाली, वडोदरा-9
: (0265) 606082
द्वारा प्रकाशित

फ्रैन्ड प्रिंटर, वडोदरा
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 60.00

स्वर्गीय माताजी एवं पिताश्री

को

समर्पित

शब्द

प्रसून

पारस....... ?

राजेन्द्र पाल शर्मा का काव्य-संग्रह 'पारस' पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। सुविचारित और संयमित जीवन में यह कृति अपना विशेष स्थान रखेगी।

कवि ने अपनी कविताओं में ईश्वर से लेकर प्रकृति तक अनेक प्रसंग उठाए हैं। आरंभ में ही बता जाने लिखा है 'सब ईश्वर का बनाया है।' बेहतर होता वे अपनी अस्मिता को समझते। सच यह है कि सभी कुछ मानव निर्मित है, यहां-तक कि मनुष्य ने ही ईश्वर को बनाया है। जो हो, यह कवि की शिष्टता है, मैं उसका स्वागत करता हूं।

इस काव्य-संग्रह की रचनाएं

प्रेमभाव है और आशावाद से ओतप्रोत है। आशा ही विश्वास को जन्म देता है और विश्वास के ठोस धरातल पर ही मनुष्य-व्यक्तित्व बनाता है। हिंदी काव्य-जगत में आज जो अनर्गल प्रलाप चल रहा है राजेन्द्र पाल का यह संग्रह उनसे अलग खड़े होकर अपनी पहचान बनाएगा, मुझे विश्वास है।

'क्षितिज के पार भी कुछ और क्षितिज बाकी है'; नाम का यह सत्य काव्य-सत्य है।

वर्मा जी और अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखें और काव्य-जगत में अलग पहचान बनाएं, मेरी शुभाशा-

राजेन्द्र अवस्थी

सम्पादक : कादम्बिनी
नयी दिल्ली-110001.

पारस.....

श्री राजेन्द्रपाल वर्मा 'इन्द्र' एक निष्ठावान तथा गंभीर रचनाधर्मी होने के साथ-साथ अत्यंत संवेदनशील और सहृदय भावुक कवि भी हैं, इनका काव्य संग्रह पारस उनकी इन्हीं संचेतनाओं का विषद काव्यांकन है जो उनके अन्तस की अनन्त आस्थाओं तथा समर्पणों को व्यक्त करता है।

ईश्वर के प्रति श्री राजेन्द्रपाल वर्मा की समर्पित निष्ठा आर्य समाजी निर्धारणों के अनुरूप है। 'पारस' में समाविष्ट कविताएं वैदिक अवधारणाओं से निस्सृत होकर अधुनतम परिवेश के साक्ष्य बनकर अंकित हुए हैं। 'ईसा वास्य मिदं सर्वं' के अनुरूप वह इस विश्व को ईश्वर की इच्छानुसार संचलित मानते हैं। विश्वबन्धुत्व की उदारवादी चेतना से जुड़े रहते हैं।

मनुष्य की अवाधित प्रगति और सौहार्द्रता के प्रति कवि आश्वस्त हैं वह कहता है -

मैं तो हर बार यही सोचता हूँ
खुशबू की हर महक में
हर बार पंहल तुम्हारी होगी।

वह मनुष्य जाति को प्रेरणओं और प्रोत्साहन के संकल्प से जोड़ता हुआ कहता है -

तुम्हारे पास होगा ईश,
तब तुम बनोगे सिरमौर,
जमाना तुम्हारे साथ होगा,

कवि के कथ्य में काव्य-सौन्दर्य की सन्तिहिति भी है जो किन्हीं स्थापित मान्यताओं को व्यक्त करता है, यथा -

दर्पण नहीं छोड़ेगा
चले जाओ कहीं भी,
अपने मन को आइना बना लो।

'पारस' में भक्ति है, समर्पण है, श्रद्धा है, भावुकता है, कल्पना है, मानवीय संचेतना है, सामाजिक आस्था है, बन्धुत्व की उदारवादी उद्भावना है, कथ्य का सौन्दर्यवादी अभिगम है तथा साहित्य सद्भावना के उच्चरण मूल्य हैं।

'पारस' में राष्ट्रभूमि के प्रति विनतभाव है, राष्ट्रीयता के प्रति अटूट आस्था है, यथा -

वन्दना के इन स्वरों में,
मातृभूमि का समर्पण
प्राण और सम्पूर्ण जीवन
है तुम्हीं पर आज अर्पण।

काव्य संग्रह 'पारस' में ईश्वर/समर्पण/जीव और प्रकृति चार विभाग हैं, ये चारों विभाग एक ही केन्द्रीभूत मूलभाव के परिवृत्त से घिरे हैं और वह है मानवीय उदारवादी संचेतना अथवा संवेद्य भावुकता का उत्कर्ष।

'समर्पण' में कवि का सहज दैव्य, उसका भावुक समर्पण, उसकी विनयशीलता, उसका उदार्य उभरकर सामने आया है। इसमें राष्ट्रभक्ति भी है, देशप्रेम भी है, मातृभूमि के प्रति लगाव भी है, देश के दुश्मनों को खुली चुनौती भी है और वीर सैनिकों के प्रति श्रद्धाभाव भी है।

कवि बड़े ही काव्यात्मक ढंग से कहता है -

सरहदों के केक्टस कुछ और ऊँचे हो गए
नागफनियाँ और कुछ पलने लगी हैं,

इसी तरह -

मर्यादा का वंशज मैं
और गीता का रखवाला
सहस्त्र शीश चढ़ जाएं बलि
पर हिन्द न मिटने वाला।

कवि राष्ट्रीयता का आह्वान करता हुआ कहता है -

सो गई मानवता बह रहा खून,
पंगु हो गया राष्ट्र, सूख गए ज्ञान के खेत

वह एक उदारवादी राष्ट्रीय भावना से जुड़कर ही भारतमाता का व्यापक रूप निश्चित करता है -

कश्मीरी कन्नड़ की कलियाँ, तमिल तेलगू मलयालम के,
बंगाली कुंज उद्यानों से, सतरंगी पुरुषों से महकी,
भारतमाता की माला।
हिन्दी इन सबके मस्तक पर चमक रही बनकर ज्वाला।

राजभाषा यज्ञ में कवि ने निर्धारित पंच महायज्ञों की विवाद परिकल्पना की है जो नए राष्ट्र के निर्माण का शिलान्यास करेंगे।

कौमी एकता/अणु विस्फोट/आतंकी/राष्ट्र चिंतन/स्मरण/नवरचना/जीवन की लकीरें/चिन्ता आदि कविताएं कवि के समर्पित विश्वासों की नींव पर निर्मित हुई हैं।

जीव में कवि दार्शनिक आस्थाओं से जुड़कर भारतीय मनीषा का संवाहक बन जाता है। वह कहता है -

उड़ चला बिन पंख अब तो,
कल्पना के पार मैं,
बन गया अस्तित्व अब तो
चाँद के उस पार भी।

इस संभाग में कवि ने राष्ट्र में घटित अनेक दुर्घटनाओं को भी काव्यांकित किया है जिनमें 'तन्दूर में सिन्दूर', 'राजनीति' आदि कविताएं समाविष्ट हैं।

कहीं-कहीं कवि महाकवि निराला की शैली पर श्रम की महत्ता को व्यक्त करता है, यथा -

श्रम से पथिक की चाल,
भाल पर पसीने की लकीरें,
हवा से अस्त-व्यस्त केश
किसी श्रम की कहानी कहते,

साहित्यिक गांभीर्य से 'पारस' की कविताएं मुक्त हैं। कवि का उद्देश्य अपनी काव्यकला की उत्कृष्टता प्रभावित करना नहीं है अथवा कहा जा सकता है कि काव्य चमत्कृति से मुक्त कवि का मूलस्वर सामान्य व्यक्ति के परिवेश तक ही सीमित है। जन-सामान्य की साधारण मनोवृत्तियाँ इसमें संलग्न हैं। कवि रूबरू आम आदमी से साक्षात्कार करता है और उसे अपने सम्मोहन में बाँध लेता है।

प्रकृति सम्भाग में कवि ने आलंबन के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है जो बहुत व्यापक पटल पर अंकित हुआ है जैसे-

नीम का एक पंख,
आ गिरा आंगन में औंधा,
अपलक निहारता शीर्ष पर
क्या था मेरा अस्तित्व ?

कवि प्रकृति के मनोरम वर्णन के साथ-साथ अपने अभिप्रेत को भी व्यक्त करता है यथा -

प्रकृति में कवि ने अपने क्रांतिधर्मी-विचारों को भी समाविष्ट किया है-

बरसो हे मेघ,
बरस, बरस मेरे आँगन की,
तपन को शांत कराओ,
कब तक यह तपन सहूँगा,
हरित करो मलिन कांति को

अन्त में कुछ मनोरंजक क्षणिकाएं हैं तो कवि के स्वच्छन्दतावादी मनोविकारों को प्रगट करते हैं।

अन्त में यही कहूँगा कि भारतीय मनीषा के गौरव से जुड़े वर्मा जी ने 'पारस' में अनेक रूप संकलित किए हैं जिनसे उनका व्यापक दृष्टिकोण प्रगट होता है। मेरा विश्वास है कि सुधी रसज्ञ विद्वान तथा रसिक जन इस संकलन का स्वागत करेंगे।

हिन्दी विभाग
म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

- विष्णु विराट

प्रसंग वश.....

प्रस्तुत काव्य संग्रह 'पारस' श्री राजेन्द्रपाल वर्मा की पहली काव्य कृति है। यह कृति पाँच खंडों में है - ईश्वर, समर्पण, जीव, प्रकृति एवं क्षणिकाएँ।

ईश्वर खंड की पहली रचना 'चिंतन' कवि के चिंतन को स्पष्ट करने में काफी है, 'मनुष्य/होकर भी नहीं सोचा/तो क्या होगा?'

'पारस' संस्कृत शब्द स्पर्श से बना है पारस उस पत्थर का नाम है जिसके स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है। कवि के विचार में माता-पिता और गुरू रूपी पारस से ईश की अनुभूति संभव है। समर्पण खंड की सभी रचनाएँ पूर्णतः राष्ट्र को समर्पित हैं। इनमें समर्पण है-राजभाषा हिंदी, सैनिक व कौमी एकता के प्रति।

कवि की वाणी में कहीं तुलसीदास की सगुण भक्ति है तो कहीं निर्गुणिया कबीर का समाजवाद

'क्या तुम्हारे चार कान हैं
और मेरी तीन आँखें,
सबको एक ही पेट मिला
फिर क्यों अन्न से भरा किला'

'जीव खंड में जीव से संबंधित विविध रूपों के विषय में रचनाएँ हैं तो प्रकृति खंड में प्रकृति के विविध रंगों बिंबों व आयामों पर कविताएँ रची गई हैं 'क्षणिकाएँ' खंड में बड़े ही सूक्ष्म भावों को रूपायित किया गया है -

'जब भी कोई नाव/किनारे की ओर बढ़ती है/ बीच मझधार उनसे कहती है तुझे हर बार मुझ से मिलना होगा यह नियति हम दोनों की साझी है।

इस पारस संग्रह में छांदस और अछांदस दोनों तरह की रचनाएँ हैं। छंदबद्ध कविताओं में कोई निश्चित छंद नहीं है मगर रचनाएँ गेय हैं तथा गीति काव्य के लक्षणों को पूरा करती है -

कोख में ढलती रही
गोद में पलती रही
रेशा रेशा ज़िंदगी
तिनका तिनका ज़िंदगी

कवि समय का वाचक होता है सम सामयिक परिस्थितियों से अछूता नहीं रह सकता। अभी हाल गुजरात में हुए दंगों के दौरान आम आदमी द्वारा झेली गई पीड़ा से वह वाक़िफ़ है।

'बहती रही गुजरात में
कभी ज्ञान की गंगा
पर अब देखने को मिलता है
जहाँ तहाँ दंगा'

कवि का केंद्रीय भाव प्रगतिशीलता है वह कहता है --

'मंदिर में न बिठलाओ ! बल्कि
उनके बताए मार्ग पर चलकर
नए भारत की नींव के
पत्थर ही बन जाओ'

कवि राजनीतिक परिदृश्य से अच्छी तरह परिचित है पिछले दशकों में राजनीति में जो उतार चढ़ाव आए हैं राजनीति में जो पतन हुआ है उसपर कवि व्यंग्य करते हुए कहता है -

'राष्ट्र नायक भी फिसल गए
सुविधा के तल में उतर गए'

कवि आर्य समाज परिवार से है। वह बीच-बीच में आर्य समाजी विचारों को भी पिरोता जाता है

'बुद्धि ज्ञान को शिरोधार्य कर
वेद ज्ञान का दीप जलाओ
विश्व आर्य परिवार बनाओ
राष्ट्र का स्वाभिमान जगाओ'

कवि की भाषा आज की भाषा है जहाँ एक ओर संस्कृत शब्दों की बहुतायत है वहीं प्रचलित अंगरेजी शब्दों को भी कवि ने आत्मसात किया है जो समय की माँग है।

शैली सहज सरल व सुबोध है। आम पाठक इस शैली से जुड़ेगा और इसे अपनी शैली मानकर आत्मसात करेगा।

कवि ने इस पारस कृति की 'रचना' गुजरात अंचल में की है जो कि हिन्दी के लिए प्रारंभ से ही उर्वरा रहा है। मुझे आशा है कि यह कृति पश्चिमांचल हिन्दी साहित्य में तो एक स्थान बनाएगी ही साथ ही अखिल भारतीय स्तर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में समर्थ रहेगी। हिन्दी साहित्य आँगन में इस कृति का स्वागत होना चाहिए।

शुभकामनाओं सहित

– डॉ. माणिक मृगेश

'मृगेशायन',
22-बी मनोरथ सोसायटी,
न्यू समा रोड, वडोदरा

अपनी बात.....

सर्वप्रथम तो मैं ईश्वर में अगाध श्रद्धाभाव रखते हुए कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ जिसने मुझे आर्य परिवार में जन्म दिया और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज की विचारधारा और मानव मूल्यों की पहचान हो सकी। ईश्वर के ज्ञान में भूत, वर्तमान और भविष्य की कोई व्यवस्था नहीं हैं वहाँ सबकुछ वर्तमान होता है। किन्तु मानवीय देह के कारण जन्म-मृत्यु-पुनःजन्म का सिलसिला अनवरत चलता रहता है और यही भूत, वर्तमान और भविष्य का 'दर्शन' है। मेरे पिता श्री केवलराम एक स्वतंत्रता सैनानी थे जो कि गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में खादी भण्डार की उन्नति के लिए प्रतिबद्ध थे और अपने जीवन के अंतिम 20 वर्ष उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द के पौत्र प्रियवृत आचार्य के सहयोगी रहकर गुरुकुल काँगड़ी को समर्पित किए। मेरी माताजी श्रीमती विद्यादेवी जीवन संगिनी के रूप में उनकी छाया बनकर सभी कार्यों के लिए समर्पित रहीं। मुझे वह सब कुछ वंश धरोहर के रूप में मिला। वैदिक साहित्य में मेरी रुचि होने के कारण ही मेरी शब्द व्यंजना भी उसीसे प्रभावित है शायद।

ईश्वर, जीव और प्रकृति (त्रैतवाद) के प्रति आस्था ही मेरे विचारों का संबल है इसकी झलक भी मेरी कविताओं में प्रतिबिंबित हो सकी। मेरी धर्मप्रिया जीवन संगिनी प्रमिला वर्मा पिछले तीन वर्षों से इस काव्य संग्रह 'पारस' को प्रकाशित कराने का आग्रह करती रहीं अब मेरी सेवा निवृत्ति से पूर्व ही प्रकाशन का बीड़ा उन्होंने स्वयं उठाया संप्रति उन्हीं की एक कविता भी इसमें इस प्रकार है-

स्त्री क्या है ?

नहीं मालूम उनको स्त्री क्या है
अमृत पिलाया जिसको
उसीने जहर दिया है
उनींदी सोकर
तुम्हारी रक्षा का भार लिया है,
खुद गीले में सोकर भी,
तुम्हें सूखे में सुलाया है
उसी माँ को कोसते हो
तुम्हें जिसने 'पुरी का ताज' दिया है
वेद मंत्र का उच्चारण मात्र नहीं
'स्त्री' स्वयं वेद और गीता है

उनकी यह कविता समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुई व सभी के द्वारा सराही गई। यह कविता प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने तब लिखी जब 1994 में पुरी शंकराचार्य ने कलकत्ता के एक समारोह में एक सभ्रांत महिला को वेद मंत्र पाठ से रोक दिया था। स्त्री शिक्षा हो चाहे वेद पाठ या अग्रिहोत्र हर क्षेत्र में वे महिला अधिकारों की समर्थक है यह उन्हीं के परिश्रम का फल है कि पुत्र इंजिनियर और बेटी डॉक्टर बन सकी। फिर इसमें दोराय कैसे हो सकती है कि इस काव्य संग्रह को प्रकाशित कराने में उनका योगदान न हो। आर्यत्व से सुसंस्कृत परिवार के पाँच सदस्यों, राजेन्द्र, प्रमिला, राजीव, स्मिता और सारिका

नामों का प्रथमाक्षर 'पारस' में समाहित है अतः इस काव्य संग्रह का नामाकरण ''पारस'' भी उन्हीं का सृजन है।
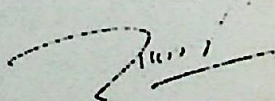
1986 में बड़ौदा स्थानान्तरण होने के बाद लगभग सुप्त हुए संस्कार फिर से जागृत होने लगे इन्हें जगाने में डॉ. माणिक मृगेश, डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी तथा श्रीमती आशा सक्सेना की त्रिमूर्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

ईश्वर में अगाध निष्ठा और विश्वास मेरे जीवन के मूल में सदैव समाहित रहते हैं जिसके कारण मेरे ये भाव भी स्फूटित होते रहते हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर समाज से प्रभावित रहना एक सामान्य प्रक्रिया है इसीलिए सामयिक घटनाओं का चित्रण भी कविताओं में होना स्वाभाविक ही है।

यूँ तो मैं हिन्दी भाषी क्षेत्र का ही रहने वाला हूँ महर्षि दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दी के लिए विशेष समर्थन और पोषण का प्रभाव भी मेरे जीवन में हुआ और यहाँ रहते हुए केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् के माध्यम से एक माँ सेवा की भाँति 'हिन्दी' की सेवा का अवसर मुझे मिला इसके लिए मैं अपने सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करता हूँ -

अभी भी जो रह गए काम
ईश कृपा से कर सकूँगा
अपने पूरे काम
चाहूँगा हर बार मिले
हिन्दी का वरदान
शत् शत् प्रणाम
शत् शत् प्रणाम

विनीत

राजेन्द्र पाल वर्मा

अनुक्रम

ईश्वर (1-12)

समर्पण (13-34)

जीव (35-60)

प्रकृति (61-75)

क्षणिकाएं (77-80)

चिंतन

?

हमारा
कुछ भी नहीं,
सब ईश्वर का बनाया है,
हमें
यह सोचना है
ईश्वर ने हमें
किसलिए बनाया है।

|
|
|
|
|
|
|
|

बात
कुछ और भी है
धारा में चिंतन की,
मनुष्य
होकर भी नहीं सोचा
तो क्या होगा ?

ईसा वास्य मिदं सर्वं

जलज की मानिंद रहना सीखलो तो !
रश्मियों के पुंज सा तुम बन सकोगे !
प्रकृति अपने शिखर पर होगी।
पहचान तुम्हारी कुछ अलग होगी।
दूर से गुजरेगा कोई अजनबी जब,
समीर और सुगंध उसको खींच लेगी।
तुम्हारी खुशबू से महकती उसकी वाणी।
हर दिशा में ओस की बौछार होगी।
हे ! हे ! ईश्वर पुत्र मानव !
मैं तो हर बार यही सोचता हूँ।
खुश्बू की हर महक में
हर बार पहल तुम्हारी होगी।
तू ही सिर मौर है और तू ही सर्वभूत
फिर कहीं कोई दुखी होगा न दीन
यही है मेरा सपना, ईश्वर है तू और मैं 'इन्द्र'

विश्व दानिम सुमनसा स्याम

मन की परिस्थिति को बदलना सीखो
मन को खिलने दो फूल की तरह।
जीवन की दिशा ठीक हो जाए तो,
दशा ठीक हो जाएगी स्वयं।
सफलता प्राप्त करनी हो तो दौड़ो,
गन्तव्य की ओर,
प्रभु को प्राप्त करना हो तो
रुको, मन को रोको।
तुम्हारे पास होगा ईश
तब तुम बनोगे सिर मौर
जमाना तुम्हारे साथ होगा।
दर्पण नहीं छोड़ेगा
चले जाओ कहीं भी
अपने मन को आईना बनालो !

स्पर्श

स्पंदनों के स्पर्श से
काल करवट ले रहा।
एक अंकुर बुदबुदा कर,
जीव करवट ले रहा।
रश्मियों-सा ढल रहा,
शशि की किरण का ताप भी,
उपनिषदों के शब्द कितने,
कर रहे ....।
यम प्रतापी देखता अपलक,
रह गया किसी ओर से।
ईश के इस चक्रधर को
तोड़ पाया क्या कोई।

स्वर्गारोहण

पर्वत से उतरता झरना
कल-कल बहती अलकनन्दा
किनारे पानी पीते बगुले
झाड़ियों में किट्टक किट्टक स्वर
पृथ्वी पर चढ़ती प्रभात की लालिमा
पनिहारियों की झूमती कतारें
प्रसारित लालिमा की कांति
धरा पर स्वर्ग का आलोक
ईश्वर के ऐश्वर्य की
प्रति ध्वनि है मौन मुखर
किन्तु मेरी मौन स्वीकृति
सब कुछ निहारती है।
गिरी से गिरता प्रपात
झर झर झरता गान
हंस तैरते चहुँ ओर
यही प्रकृति का गुँजन गान।
मन की कल्पना का दृष्टिपात
स्वर्गारोहण की दशा है।

पारस

माता-पिता के अंशदान से
संस्कार के फूल बेल से
पंच भूत मृदु जाल माल-सा
स्वर्ण-सा मिल गया तन।

शिक्षा तो गुरुओं की बानी
हर कहीं बाँटने की ठानी
क्या हो उस शिक्षा का सानी
वन्दन जिससे हो गया मन।

देव लोक इस स्वर्ण धरा पर
अगम अथाह अनुभूतियाँ
अन्न, जल, वायु प्रकृति पाकर
नन्दन-सा हो गया बन।

ईश की अनुभूति, अराधना से
चित्त तो चन्दन हो गया था
पत्थरों की खान में भी
'पारस' हो गया मन।

अन्तरिक्ष के पुष्प

अन्तरिक्ष के कोने का,
एक दीप्तिमान सूर्य,
चारों ओर घूमते ग्रह उपग्रह,
उन्हीं में एक जीवित ग्रह,
हम पृथ्वी के नाम से,
जानते और पहचानते हैं।

कितनी आकाश गंगा,
लाखों सूर्य करोड़ों तारे,
अरबों ग्रह उपग्रह,
कितना जान पाये हम।

अपनी पृथ्वी की जानकारी,
तो अधूरी है अभी,
और व्योम में भटकने लगे,
कितना ज्ञान और विज्ञान।
कितनी ऊष्मा कितना पानी,
पशु, पक्षी और मानव,
इसके अलावा और भी,
बहुत कुछ है अभी।

काल करवट बदलता रहा,
रूप और स्वरूप भी बदला,
पृथ्वी भी तो बदलाव का अंग है;
कहीं वनस्पति, रेत, पहाड़, जल,
नदी, समुद्र झरने और पोखर।
काल के गर्भ में
छिपते और उदय होते हैं।

अन्तःकरण में क्या छिपा है इसके,
यह भी तो जानना है शेष,
काल कूट भी यहीं उपजता,
और अमृत जल भी।

गर्भ में गर्भ, अनेकों गर्भ,
यही चमत्कार क्या कम है,
अन्तरिक्ष के गर्भ का,
पुष्प है यही धारा।

यह भी तो स्वयं,
शिशु समान पालती है,
स्वरूप और विकास सब,
बदलाव के प्रतीक हैं।

विज्ञान के चमत्कार को,
सब नमस्कार करते हैं,
लेकिन नया तो कुछ नहीं,
जो कुछ भी पहले से था,
उसी को जाना, पहचाना और माना
विज्ञान का झण्डा उठाया,
लहराया और फहराया।

आर्कमिडिज़ और आईंस्टीन के,
सिद्धान्त और वृतान्त,
उससे आगे भी और,
बहुत कुछ जानना है अभी।

पृथ्वी पर चलने वाले पशु और मानव,
हवा में तैरने वाले,
पक्षियों में क्या फर्क,
जन्म का स्वरूप और,
दशायें भी भिन्न क्यों हैं ?

क्यों बच्चा जन्मता है मानव का ?
अण्डे क्यों देते हैं पक्षी ?
क्यों गाय और हिरण के,
छौने दौड़ पड़ते हैं,
जन्म के सूक्ष्म अन्तराल पर ही।

मनुष्य के शिशु को,
रक्षा सहारा और भोजन,
सभी कुछ तो चाहिए उसे।
किन्तु इससे पूर्व सोचिये,

एक सूक्ष्म कण से भ्रूण,
विकास करता गर्भस्थ शिशु,
मात्र नौ माह की अवधि में,
कितना गुणा विकसित होता है।

सर्वोत्तम सुरक्षित और संरक्षित,
रोग, शोक ग्लानी से दूर,
पानी के कोठर में तैरता,
हँसता जीवित खेलता,
हिलता, डोलता, घूमता शिशु।

शौच की चिन्ता,
न लघु शंका की फिक्र,
न भोजन की भूख,
न पानी की प्यास।

रक्त और भोजन का स्रोत,
मात्र गर्भनाल और समविद्
विज्ञान के लिए तो चमत्कार,
किन्तु सृष्टि क्रम को,
चलाने वाले का विज्ञान,
कितना सापेक्ष और पूर्ण है।

ईश्वर

उर्ध्वा मुख ही क्यों अग्नि ज्वाला,
फल क्यों गिरते धरा पर ही,
मंद समीर कैसे बहती है,
और निरन्तर बहता है नीर।

काल चिन्तन, बदलता स्वरूप,
कितनी विभिन्न दशायें,
इन नेत्रों ने देखी है,
मन ने कल्पनायें की,
मस्तिष्क ने सोचा,
पाँवों ने यात्रा की,
हाथों ने निर्माण किया।

नहीं ! निर्माण भी तो,
भ्रामक शब्द है यहाँ,
सभी कुछ पृथ्वी की उपज है,
मात्र स्वरूप ही बदलता है,
सदियों से चलता रहा,
स्वरूप बदलने का क्रम,

पर्वत, झरने, जंगल, पहाड़,
नदी, खेत और निवास,
सभी कुछ तो बनता और समा जाता है,
उसी धरा के गर्भ में बार-बार।

चिन्तन की धारा है विचित्र,
जब भानु उदय हो जाता है,
कितना भी मोटा लगा हो बल्ब,
मात्र दीपक-सा टिमटिमाता है,
सभी कुछ निःशुल्क बाँटता है ईश्वर,
गुणगान उसी का उत्तम है।

फलों को पकाने का श्रेय:, सूर्य,
रस भरता रहता शशि निरन्तर,
झरझर बरसता पानी अम्बर,
जीव जगत गाता मल्हार।
बुद्धि के कपाट खोलकर,
मनुष्य ने कुछ करने की ठानी,
मन, मस्तिष्क 'और शरीर,
तीनों ने एक चित्त संकल्प किया।

इसी के उदर से लिया,
लोहा, अग्नि, मिट्टी और पानी,
अंतःकरण में व्याप्त, तरल,
अग्नि को भी खोज लिया।

कभी आसाम, गुजरात, मरुधरा,
मुंबई और मद्रास के किनारे,
मुहाने और पठारों पर,
तेल श्रोत का विकास किया।

अग्नि के स्वरूप को बदलकर,
रौंधता है सड़कों, नभ, नदी समुद्रों को,
चार दशाब्दि, चालीस वर्ष का,
इतिहास पृष्ठों पर तरल ऊर्जा का,
तेल की लकीरें, गैस के तूफान,
मनुष्य जगत के पाँव और शक्ति बना।

गर्भ का भार घटाया,
भूतल का भार बढ़ाया,
कहीं घटाया, कहीं बढ़ाया,
घटाया तेल और पानी बढ़ाया,
जब हिसाब लगाया,
समस्त जीव जगत से,
ओतप्रोत इस पृथ्वी ग्रह को,
व्योम में तैरते पाया।

लहरों की भाँति,
भानु प्रकाश चढ़ता,
और उतरता रहा,
दिन, रात, वर्ष, युग।

चतुर्युगी और कल्प,
और अन्त हीन काल,
यही तो जीवन, मृत्यु
और नवजीवन है अनन्तकाल।

समर्पण

वन्दना के इन स्वरों से
मातृ भूमि क़ो 'समर्पण'
प्राण और सम्पूर्ण जीवन
है तुम्हीं पर आज 'अर्पण'
बाण शैया पर भी लेटा
हर किसी का वार झेलूँ
भीष्म के सदृश धरा पर
हिन्दी के अमृत को पी लूँ।
जन्म लेकर आज यौवन के -
महकते सुर्ख आँगन
जब ढलेगा यह बुढ़ापा
और नया शैशव मिलेगा।
फिर तेरी गोदी में पल कर
और बड़ा होता रहूँगा
अन्न, जल और वायु से
इस धरा का पान करूँगा।
हर बार हिन्दी से तेरी माँ
मैं यूँही सेवा करूँगा
रास्ते कितने कठिन हों 'इन्द्र'
अब न पथ से मैं डिगूँगा।

हमको हिन्दी अपनानी है

हिन्दी भाषा की संस्कृति से,
भारत इतिहास अमर होगा।
बने अटूट मेखला हिन्दी से,
चहुँदिशि विकास ही प्रण होगा।

एक बात मुझे जो कहनी है,
नौका के खेवन हारों से।
26 जनवरी 50 से यदि
भाषा का भार लिया होता।
अर्द्धशताब्दी वर्षों में हिन्दी के,
100 करोड़ सेवक होते।

यह तपो भूमि भारत की है,
विद्या को तपस्या माना है।
पर आज देखने में आता,
हिन्दी प्रयोग कुछ काना है।

संस्कृति के बल जिन्दी रहकर,
भारत विकास कर पायेगा।
हिन्दी के आलोचक सुन लो,
भारत विश्व ज्ञान का नेता था,
अब नहीं रहा पर कल जरूर हो जाएगा।

गंगा जमुना की धरती पर
या गोदावरी, कृष्णा कावेरी।
या बंगाल की खाड़ी में
गौतम, गाँधी का सपना था,
कण-कण में फले फूले हिन्दी।

भारत माता के भाल-मुकुट पर
लालिमा वर्ण में जब बिन्दी।
सरताज सभी भाषाओं की,
बनकर चमकेगी यह हिन्दी।

आज शपथ लें फिर से हम,
हिन्दी भाषा अपनाएंगे।
भारत के जन-जन जीवन में
हिन्दी का ज्ञान बढ़ाएंगे।

सरहद

सरहदों के कैक्टस कुछ और ऊँचे हो गए
नागफनियाँ और कुछ पलने लगी हैं।
सीमाओं पर फिर घिरने लगे बादल,
दिलों के फासले कुछ और ज्यादा हो गए।

गौरी की आग से तपने लगे दिल,
गजनवी की याद ताजा कर रही हवाएं।
उधर के शासक भी उगलते रहते हैं आग,
हवाएं और लताएं तपने लगती हैं।

दिलों में झांकने की फुर्सत किसे है,
जिनके दिल दिमाग त्रस्त और संतृप्त हैं।
उधार का दिमाग और कारीगरी की खरीद,
भला किसका कर सकेगा वह तीर।

दिलों की दुखन और मन की तपस,
बँटवारे की याद ताजा कर रही।
खून का बँटवारा अभी और होगा,
यही इस महाभारत की नियति होगी।

इस विनाश लीला की द्रौपदी और
शकुनि के पासों को पहचान कर
एक का चीरहरण रोक कर,
दूसरे के पासों को छीनकर

हर दिल का दर्द हर गम की दवा।
पुण्य का मार्ग है सामवेद कथा।

काल दर्पण

आज फिर गौरी उठा
सरहद के उस पार
जल, थल नहीं भाया उसे
पकड़ा वायु मार्ग
उसने की भंग शांति
यमन दूत बन सोच रहा
कुछ कर दूँ रक्त क्रांति॥

हर पत्थर, कण-कण
चेतावनी देता है।
वायु मार्ग में ही नष्ट करूँगा
अर्जुन का गांडीव कहता है।
अग्नि, पृथ्वी जल आकाश सभी मेरे हैं।
मातृभूमि की रक्षा करना
अपना धर्म समझता हूँ।

मर्यादा का वंशज मैं,
और गीता का रखवाला
सहस्र शीश चढ़ जाए बलि
पर हिन्द न मिटने वाला।
फिर भी गर्व यही करता हूँ।
मैं भी भारत का बेटा हूँ॥

राष्ट्र का स्वाभिमान जगाओ

सो गई मानवता बह रहा खून,
पंगु हो गया राष्ट्र सूख गए ज्ञान के खेत,
वेद-ज्ञान को घर-घर बाँटो,
ज्ञान का दीपक जलाओ,
राष्ट्र का स्वाभिमान जगाओ ॥1॥
निर्मल झरने, बहतीं नदियाँ,
जनता प्यासी, धरती प्यासी,
पानी का हुआ राजनितिक अपहरण,
अपराध और अपराधियों को,
क्षितिज के उस पार भगाओ,
बल्लरियों की बेल लगाओ ॥2॥
अज्ञानता और अंधकार से,
राजनीतिज्ञों की संधि है,
बनिया हाफ, जाट माफ,
ब्राह्मण साफ कहना तो विषवमन है,
शरीर और समाज को समझकर,
बुद्धि ज्ञान को शिरोधार्य कर,
वेद ज्ञान का दीप जलाओ,
विश्व-आर्य परिवार बनाओ,
राष्ट्र का स्वाभिमान जगाओ ॥3॥
कश्मीरी, कन्नड़ की कलियाँ, तमिल, तेलगू मलयालम के,
बंगाली कुंज उद्यानों से, सतरंगी पुष्पों की महकी,
भारत माता की माला,
हिन्दी इन सबके मस्तक पर, चमक रही बनकर ज्वाला।
हिन्दी में ही घर-घर में, प्रेम भाव के गीत सुनाओ।
राष्ट्र का स्वाभिमान जगाओ ॥4॥

राष्ट्रभाषा यज्ञ

ऋषि दयानन्द और गाँधी की पद्धति हमें अपनानी है,
पाँच महायज्ञों की महिमा घर-घर पहुँचानी है।

ब्रह्मचर्य है नीव भवन की, भवन विशाल बनाता है,
मात-पिता की सेवा करना प्रथम यज्ञ कहलाता है।
माँ-माँ करते जन्म हुआ और हिन्दी उसकी वाणी है,
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर पहुँचानी है।
ऋषि दयानन्द.......॥
पाँच महायज्ञों.......॥

गुरू की सेवा यज्ञ दूसरा विद्या जिससे पानी है,
इस विद्या के लिए गुरुओं ने दी अपनी कुर्बानी है।
कर्मों के बल पर ही मानव महा मानव बन जाता है,
इसी धरा पर राम, कृष्ण की भाँति पूजा जाता है।
ऐसी विद्या हम भी सीखें, जिसका कोई न सानी है,
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर पहुँचानी है।
ऋषि दयानन्द.......॥
पाँच महायज्ञों.......॥

चार वेद शिक्षा पाकर, प्रवेश ग्रहस्थ में करता है,
यज्ञ तीसरा यह विशेष, सृष्टि निर्माण प्रदाता है।
अग्नि, वायु आदित्य, अंगिरा, वेद इन्हीं की वाणी है,
कपिल, कणाद, मनु, गौतम, जीवन शैली के दानी हैं।
शिक्षा का अधिकार हो सबको, यही ऋषियों की वाणी है।
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर पहुँचानी है।
ऋषि दयानन्द.......॥
पाँच महायज्ञों.......॥

चौथा यज्ञ वानप्रस्थ होता है, वही विद्या का दानी है,
जबसे शिक्षा युवकों ने बाँटी, हुई धर्म की हानी है।
मैकाले ने घर-घर बाँटी गुलामी की निशानी है।
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर में पहुँचानी है।
ऋषि दयानन्द....... ॥
पाँच महायज्ञों....... ॥

जब आया संयास काल, एष्णाओं से निर्भिमानी है,
पाँचवा यज्ञ है यही काल, सब जीवों का कल्याणी है।
देश हमारा, धरती अपनी, संस्कृति आर्य पुरानी है,
हिन्दी के गौरव की गाथा आज हमें दुहरानी है।
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर में पहुँचानी है॥
ऋषि दयानन्द....... ॥
पाँच महायज्ञों....... ॥

आज दशा है क्या देश की यह भी हमें जतानी है।
माँ के पुत्रों में मातृवंचना, भाषा भी बेगानी है॥
प्रथम नागरिक और अन्यों ने धरना देने की ठानी है।
देवलोक हैं 'इन्द्र' यही धरा और हिन्दी उसकी रानी है॥
हिन्दी के शब्दों की महिमा घर-घर में पहुँचानी है॥
ऋषि दयानन्द....... ॥
पाँच महायज्ञों....... ॥
हिन्दी के यज्ञों....... ॥

गुजरात की थाती अहिंसा

बहती रही गुजरात में कभी ज्ञान की गंगा,
पर ! अब देखने को मिलता है जहाँ तहाँ दंगा।
आप्त पुरुष कृष्ण ने कभी द्वारिका बसाया,
अहिंसा की चरम सीमा था ! रणछोड़राय कहलाया।
रीतिनीति और धर्म का वह ऐसा था पुजारी,
युद्ध नियति था, तभी तो बना वह महाभारत का रचनाकारी।
युग बीता समय बीता, फिर से ज्ञान का अंकुर फूटा।
ज्ञान का भण्डार था वह महर्षि दयानन्द॥

सरस्वती के पुजारी ने आर्य समाज चलाया
कृण्वन्तो विश्वर्याम का वेद मंत्र फैलाया॥
दयानन्द ने वेद का ऐसा किया प्रचार,
विद्या, ज्ञान और धर्म पर सबका हो अधिकार।
यह उस समय की बात है जो बन गई किस्सा,
जब डाल देते थे धर्म के ठेकेदार
कानों में पिघला हुआ सीसा।
पत्थर खाये, जहर पिया, दीप माला जलती रही
पर बुझ गयी ज्ञान शिखा दीपावली जली।

जब चल रही थी देश में स्वराज की 'आँधी'
उस महर्षि की, कल्पना का पात्र था 'गाँधी'।
अहिंसा की सतत् धारा चली आई है वर्षों से,
अहिंसा मन्त्र था एक, जिसका किया प्रयोग,
स्वतंत्र देश के साक्ष्य में हम, जिसे रहे हैं भोग।
गुजरात भारत का है जीवित अंग
जिसके महापुरुषों से विश्व हुआ था दंग।
यदि मेरा कहा मानो तो महापुरुषों को

मन्दिर में न बिठलाओ ! बल्कि
उनके बताये मार्ग पर चलकर
नए भारत की नींव के
'पत्थर' ही बन जाओ

गागर में सागर भरा, बरसाया अमृत विचार,
आर्य बन सेवा करें, समस्त विश्व परिवार।

कौमी एकता (सौहार्द)

कौमी एकता करनी है दोस्तो
सौहार्द की जरूरत है,
समाज का बँटवारा होने का खतरा
मनु मन को तड़पाने लगा है।
हम सभी तो धरती-पुत्र हैं
फिर कमी कहाँ पर हो गई,
क्या मुझे धूप तुमसे अधिक मिली
क्या चाँदनी तुमसे रूठ गई।
प्राण वायु ईश्वर ने बराबर बाँटी
अन्न फल उत्पादन में पृथ्वी सक्षम,
जल से रीते नहीं नदियाँ और जलधि
सबकुछ पाकर भी हो गए अक्षम।
क्या तुम्हारे चार कान हैं,
और मेरी तीन आँखें,
सबको एक ही पेट मिला,
फिर क्यों अन्न से भरा किला।
रोटी कपड़ा और मकान की,
जरूरत सबकी अपनी है
कहीं पे चाँदी बे हिसाब,
कहीं मनुष्यता नंगी सोती है।
आधे पेट ही सोती गरीबी
आधे तन लिपटी जननी,
लज्जा को लज्जा आ जाए,
ऐसा जीवन जीती रजनी।
शरीर में अंगों का सहयोग
मतभेद का तात्पर्य असहयोग,

सहयोग का वरदान जीवन का योग,
प्राण का असहयोग सिर्फ यमलोक।
चार पीढ़ी के बाद खून पराया होता है,
मनुष्य से परिवार, समाज से राष्ट्र होता है,
मनु की मानिंद सोचकर देखो
हर पुत्र धरती कौम का है।
सच कहा तुमने ऐ दोस्त !
कौम को एकता की जरूरत है,
घर-घर बाँटा दिल-दिल बाँटे
और भूगोल भी बाँट दिया।
मान लो अब विनय मेरी
मनुष्य स्वयं एक कौम है,
अपने सुखों को बाँट दो
दुख दूसरों का बाँटने पर मौन क्यों ?
बुद्धि का वरदान आपको भी मिला है 'इन्द्र'
मैं तो भाषण झाड़ने वाली व्यथा हूँ।

वयं राष्ट्रे जागृयाम्

बाज आये पिया तुम्हारी अटलता से,
खूब किया विस्फोट वैज्ञानिक सफलता से।
चीन को पस्त, पाक को ध्वस्त किया,
दूर हटो सीमाओं से, राष्ट्र रक्षा का वृत लिया।

पाक को चुभा तीर, क्लिंटन राख हो गया,
पाँचों की दादागीरी का चकनाचूर हो गया।
जो कहते थे सुरक्षा परिषद् में नहीं मिलेगा प्रवेश,
वे ही देंगे दोस्ती और सहोदर का सर्टिफिकेट।

कितना सुरक्षित और संरक्षित हो गया देश,
साधु ब्रह्मचारी ने प्रकट किया विकट विराट वेष।

लंगड़ाता हुआ, घिसटता, घुटनों के बल,
सरक-सरक कर चल रहा था देश।

एक ही डोज में खड़ा, और सबल हो गया,
एक श्वास छोड़कर, इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गया देश।

अणु विस्फोट

ऊपर हिम था, नीचे जल था
बीच हृदय में अगम स्थल था।
रेतीले टीलों के तटपर
खार हृदय से लावा उबला,
हिम-कणों के ताप ज्वार का,
गहरा भूरा बादल उबला।
रक्षा का वृत लेता हूँ
मैं प्यार देश को करता हूँ।
अणु विस्फोट कोई पटाखा नहीं
ऊर्जा का महान प्राणी है
विद्युत का है जन्मसूत्र
इज्जत का रखवाला है
लंगड़ाते पाँवों को शक्ति प्रदाता
राष्ट्र का रखवाला है।

आतंकी

हो गया कैसा अब खूँखार आदमी,
पशु पक्षियों को काटकर खाता था आदमी,
रुधिर के बहाये नाले
जब लगा रसना को खून,
टेस्ट बदलने को आदमी का,
खून पी रहा है आदमी।।

न बात में संजीदगी न व्यवहार में,
पास और पड़ौसी की सेवा हुआ दुःस्वप्न,
बगल से गुजरते हुए राहगीर का खून भी
सड़क पर बिखरते पुर्जों-सा,
बिखर रहा है आदमी।

घुस पैठिये तो बाहर से आते रहे सदा,
व्यापार बदला सरोकार बदला
वस्तुओं के आदान का बदल गया युग
आतंकी नर्सरी में पले, प्रशिक्षण पाया
संसद के गलियारों में भेड़-सा
दौड़ रहा है आदमी।

आतंकी छाया, गहरे अंधेरे का सूनापन
मानव बम, एंथ्रेक्स और पैट्रोल भरे जहाज
पेट्रो डालर की संस्कृति में खरीद है या बिक्री
पटाखे की तर्ज पर कहीं भी
बज रहा है आदमी।

मेरी आवाज़ सुनो

ऑगन मे लेटा
कर रहा था, गिनती तारों की
छत के कोने से शुरू करता
बढ़ता दूसरी दिशा की ओर।
आवाज़ आई भयंकर विस्फोट
और चीतकार का शोर सुनकर
मेरी गिनती टूटी।
नंगे पाँव कुछ दूर ही बढ़ा था,
लहू लुहान सिसकती आवाज़ें,
एक के बाद एक बन्द होने लगीं।
रोष में मेरे होठ फड़फड़ाने लगे,
जोर से चिल्लाने के बाद,
कुछ लोग आए और कहने लगे।
क्या तुम भी !
क्या तुम भी आतंकवादियों के हाथों
मरना चाहते हो ?
बे अन्त का भी अन्त हो गया।
मैंने बुदबुदाते हुए कहा,
हाँ ! अच्छा होता
यदि मैं भी आज ही मर जाता,
अब तो मैं हर रोज़,
मर-मर कर जीऊँगा,
तुम्हारी तरह।
जो खिड़की के कोने से देखते रहें,
मृत्यु का ताण्डव,
क्योंकि बुजदियों के देश में,
तुम कभी मरोगे नहीं शायद,
और जीवन भर, इन्हीं चीतकारों के साये में
अभिनिवेष में, जी-जी कर मरोगे।
मेरी बात सुनो, मेरी आवाज़ सुनो।

राष्ट्र चिंतन

नेफा, लद्दाख या सरोवर मान का पानी
बहुत बहाया, अब नहीं बहेगा
आँख का पानी
पूर्वांचल के हृदय पटल को
उद्वेलित कर रौंदा
कलियों और फूलों के रस को
विष बेल बनाकर सींचा
मुकुट-भाल को तोड़ा, काटा
संगीनों से बाँटा
नहीं सहूँगा, नहीं झुकुँगा,
बहुत सहा अब नहीं सहूँगा
अब तो निकलेगा,
हर काँटे से काँटा,
कलाई पर बाँधी थी राखी जिसने
उसीने सिर को नोंचा था
राखी को बाँध कलाई पर
नेहरू का कलेजा काटा था
भुजाएँ और कंधे भी कट जाएँ
यह उसकी रस्म पुरानी है।
सामने से भाई-भाई कहकर
अणु बम और मिसाइल बाँटना
उसकी आदत पुरानी है।
वहाँ सिर थोड़े अधिक
यहाँ नैतिकता का सम्बल है
वहाँ झूठ फरेब से बँधाराज
यहाँ लोक-तंत्र की ताकत है।

रार से प्यार

मैं नहीं करूँगा रार
कहूँगा बार बार
नहीं कोई तकरार
हमारी भूमि दे दो।

यह मेरा है देश प्यार,
मेरा जीवन क्षण भंगुर,
एक यही मंत्र
हर तरफ तंत्र
हर बार कोई षड़यंत्र

नहीं अब होने दूँगा
परतंत्र देश को
नहीं कोई तकरार
कहूँगा बार बार
हमारी भूमि दे दो

बहन

मेरी राखी का कच्चा धागा
फौलादी जंजीर बना दो
एक बहन नहीं मैं तेरी
धरती को बहन बना लो
तुम उठो ! बढ़ो
आगे ही आगे बढ़ना है
छाती पर गोली खा कर भी
तोपों से आग उगलना है
जब कहीं बहन माँ बेटी मिले
उससे आशिष ही लेना है
चंदन की खुशबू देना है।
विषधरों से लिपट लिपटकर
टुकड़े टुकड़े करना है
बीच समर खड़ी प्रांगण में
आज तुम्हारी बहना है।

स्मरण

हे प्रिये तुम्हारी याद मुझे,
रह रह कर पीड़ा देती है।
जीवन पथ पर झर झर बहती
पर बिन पानी की झरनी है।
बातों के झरने सूख गए,
वादों की नदियाँ रीत गई,
सूरज ने रस्ता बदला क्यों
अमृत जल सिंधु खार हुआ।
मैंने जब किया समर्पण था,
तुमने रक्षा का भार लिया,
एक झंझावत के अंधड़ में
गृहस्थ कुँज आकाश बेल को
सूखा ग्रसित मरुस्थल बीच
जीवन ढकेल निढाल किया।
कहाँ गए वे वादे सब
जो अग्नि कुण्ड के समक्ष किए
मात पिता आचार्य विद्वजन
सूर्य चन्द्र साक्षात किए।
सृष्टि क्रम पथ क्यों छोड़ दिया
नव सृष्टि वृत भी तोड़ दिया।
ईश्वर अनुगामी कहाँ बने
सकल ऐश्वर्य के स्वामी तुम
सौभाग्य वृद्धि कैसे होगी।
जब हस्त ग्रसित को लगा ग्रहण।
दाम्पत्य जीवन की शोभा भी
अब तो पीत वसन हो गई

कहाँ सूर्य चन्द्र की आभा थी
अब तो अमावस की रात हुई।
हे सूर्य देव मैं पृथ्वी बन कर
अनवरत परिक्रमा करती रहूँ
अब अनुगमन करूँगी कैसे।
क्या व्योम में यूँ ही भटकती रहूँ।
उषा के समान समर्पण मेरा
ढलक गया क्यों प्रखर तेज तेरा
मैं रही अधूरी नारी
तुम पुत्र वान नहीं कहलाये।
कैसे मिलेगा शाश्वत आशीष
मिल चार कदम नहीं चल पाये
वह सप्तपदी की अटल रस्में
ध्रुव, अरुंधती का दर्शन किया था
मधु पर्क पान करके
मार्ग विशिष्ट क्यों छोड़ दिया।
जैसे कान्ति सूर्य में,
पहाड़ स्थिति में
संसार प्रवाह और
भूमि स्थिर स्वरूप में
दृढ़ संकल्प हो गए थे तुम।
आओ पुनः स्मरण कर लें,
वे सब प्रतिज्ञाएं हम।
फिर बढ़ चलें उसी यात्रा पथपर,
यज्ञाग्नि जैसी लौ बनकर।
जैसे अन्न से प्राण, प्राण से जीवन चले,
सत्य से मन और हृदय को बाँध लें ऐसे।
क्या अलग कर पाओगे अपनी परछाई को,
विहर की पीर ही यादें तुम्हारी हो गई अब।

सत्यान्वेषण

अनुकलन सम्भव नहीं, सदा रखिए याद।
व्यक्ति-व्यक्ति की सदा, सहमति होनी साथ।।

सदा-सदा का सत्य है, कुछ काल का साथ।
नहीं साथ आया कोई, नहीं जाएगा साथ।।

व्यक्ति-व्यक्ति को कभी, जरा हुआ अभिमान।
तत्संभव की बात है, हो सकता अपमान।।

काल की गति देखिये, और देखिये क्रम।
स्थितियाँ बदलने से, मिट जाएँगे भ्रम।।

घटनाओं के जाल में, चेहरा अपना देख।
यही क्रम चलता रहा, जीवन के अतिरेक।।

साथ कुछ लाया नहीं, नहीं साथ ले जाय।
भौतिक तत्वों की गति, साथ छोड़ चली जाय।।

बिन ज्ञान मम देह यह, ज्ञान कर्म नहीं भाय।
इच्छा बिन ही कर्म से, धर्म, अधर्म हो जाय।।

मृत्युंजय

अकेला यह कृशगात् नहीं
खड़ा यह समर में
शत्-शत् परिवारों ने मिलकर
जीता महासागर में।
पर्वत ऊँचे-उँचे थे
कोई डगर नहीं थी,
पाण्डव कुल की फौजें भी
चारों ओर अड़ी थी।
गांडीव लिए खड़ा था अर्जुन
उसपर तूणीर चढ़ा था,
देख-देख मेरी काया को
तर्कश और खिंचा था।
सोचा साधा और बढ़ा,
तर्कश तीर चले,
पर्वत घाटी चूर हो चले।
चूर्ण-चूर्ण कर हर खण्डहर को,
खारे जल ले जाकर छोड़ा
नामो निशां मिटाया।
प्राण मिले विश्वास मिला,
एक नया आकाश मिला।
जीवन तुमने दिया मुझे
पर मृत्युंजय तो तुम्हीं रहे।
धर्मेश तुम्हें शत्-शत् नमन्।
शत्-शत् प्रणाम, शत् शत् प्रणाम।

नवरचना

कोख में ढलती रही,
गोद में पलती रही,
रेशा रेशा जिन्दगी,
तिनका तिनका जिन्दगी।
भानु की किरणों से फूटी,
पलकें पलकें जिन्दगी,
फूल, फल फिर वृक्ष बनकर,
आगे बढ़ चली जिन्दगी,
पत्ता, पत्ता पौधा, वृक्ष हुई जिन्दगी
रेशा रेशा जिन्दगी
तिनका तिनका जिन्दगी।

जीवन की लकीरें

खींचता हूँ लकीरें रेत पर
लहरें मिटाती हैं उन्हें
बुनता हूँ सपने
बुद्धि मिटाती है उन्हें
बनाता हूँ झोपड़ी मेहनत से
आंधियाँ मिटाती हैं उन्हें
समय ही तो डोर है विधाता की
कुछ बनाता कुछ बिगाड़ता
पुराने को विदा करके
फिर नया कुछ बनाता है।
यही रहता सिलसिला
जीवन की लकीरों का

अभिनिवेष

दूर क्षितिज पर देखा है
मैंने चिंता की रेखा को।
फिर अपने पास खड़े देखा,
यौवन की मधुरिम बेला को॥

मैं स्वयं भ्रमित सा निहारता
क्या मेरा यौवन शाश्वत है।
पर मेरी जिज्ञासा का कारण,
होता नहीं क्यों आश्वस्त है।

मैं जाग उठा, बैठा सोचा
यह केवल मात्र मेरा भ्रम है।
जन्म-मृत्यु आदेश ईश का 'इन्द्र',
यहाँ निमित्त कर्म की उत्तम है।

जो भी समझ गया इस क्रम को
वह 'पिता ईश' का बेटा है
अभिनिमेष की चिन्ता को
महर्षि दयानन्द ने जीता है।

अतीत

रे मानव ! क्यों भूल गया,
मेरे मन की पीर।
सदियों से बहला रहा,
मेरी आँख का नीर।
आदि सृष्टि से अन्त तक,
एक दूजे का साथ।
प्रणय निवेदन से हुआ,
सृष्टि निर्माण विकास।
वर्ष महीने सदियाँ बीती,
जीवन गए कई बीत।
सदा शाश्वत् रहा यही,
सबका एक अतीत।।

पुनर्जन्म

उड़ चला बिन पंख अब तो,
कल्पना के पार मैं,
बन गया अस्तित्व अब तो,
चाँद के उस पार भी।

कल्पनाओं के उधर भी,
कई घरौंदे हैं अभी,
और भी कई चांद, सूरज,
तारे और चट्टान भी,
काल के कल्पवृक्ष भी।
कई ग्रह और वसुंधरा भी।

उन बादलों के पार भी,
जीवन की सुगंध के,
और भी कई रूप होंगे।
पशु पक्षी और जीव के स्वरूप होंगे।

न ही माया, और कोई स्वार्थ
पनर्जन्म और आवागमन ही,
सत्य पथ का हर पथिक,
हर बार आगे बढ़ गया।

गरीबी

एक खण्डहर सी दीवार,
कृषगात, फटा कुर्ता, लंगोटी,
टुकड़े, टुकड़े झांकती काया,
माथे पर शिकन थकन,

अंदर धंसी आँखें,
अंतड़ियों से चिपका पेट,
चमड़ी से झाँकती, हड्डियाँ,
सूख गई टहनियों सी शिरायें।
किसी सर्प की चूसी,
जिन्दगी की कहानी,
प्रत्यक्ष दिखती है।

जटिल ताण्डव सी नाचती,
गरीबी की कहानी कह रही है।
फिर भी गरीबी हटाने के प्रलोभन
और नारों के बीच

हर दिन, हर रात
जिये जा रहे हैं। जिये जा रहे हैं।

तंदूर में सिंदूर

सावधान !
अब तो सिंदूर भी
तन्दूर में जलने लगा है,
मनुष्य होने का गर्व
पशुओं को भी खलने लगा है।
चार कदम सूरज की ओर
बढ़कर प्रतीक्षा करते रहे
पाँचवाँ कदम रसातल की ओर
प्रतीक्षा अभी रहेगी और
तंदूर की नई परिभाषा
माँसाधारियों के लिए नई आशा,
तन, तन से अलग होगा,
आधा ईंधन के रूप में जलेगा,
बकाया उसी पर तलेगा,
परोसा जाएगा किसी बगिया में जब,
किसी की बहन या किसी बेटी की
अंगुली का कोर होगा।
पता तभी चलेगा
जब डी.एन.ए. जाँच का
दस्तूर होगा।

श्रम श्रृंगार

श्रम के पथिक की चाल
भाल पर पसीने की लकीरें
हवा से अस्त व्यस्त केश
किसी श्रम की कहानी कहते।
कहीं तो गंतव्य मिलेगा,
एक पड़ाव ही तो
काफी नहीं है
क्लांति मिटाने के लिए।
हर पस्त सरपट दौड़ती जिन्दगी में,
श्रम ही तो
श्रृंगार की अभिव्यक्ति है।

अजगर की भूख

खग विहगों में अचानक
सरसराहट होने लगी
चिचियाते स्वर, फड़फड़ाते पंख,
इधर-उधर सनसनाहट में
ज्यों आग लग गई हो झुरमुटों में।
चूहे भी बिलों में घुस पड़ते
स्पष्ट होती घूमती एक लकीर
चितकबरी और सफेद भूरी
कभी घूमता कुंडली मारता 'अजगर'
खरगोश को जबड़ों में दबाये
निगलने का उपक्रम कर रहा था।
अपनी जिजिविषा को तृप्त
करने का उपक्रम कर रहा था।

विश्वास

विश्वास के स्तम्भ को
यूँ ही न सरक जाने दो
मरुधरा के गर्भ में बहती
सरस्वती को प्रकट हो जाने दो।
समय की झील में,
फिर उग आएंगे कमल,
दुख दूसरों के बाँटो
सुख अपने भी बंट जाने दो।
पाप का प्रायश्चित करने में संकोच कैसा,
निखर जाएगा जीवन पारस जैसा।
यदि ईश में विश्वास हो तो
अब तक जो बीत गया,
वृथा गया यह जीवन तो क्या,
अगला तो संवर जाने दो।

महानता के सूत्र

मानव कितना महान हो गया,
धरती से अम्बर को निगला,
और उसके पार हो गया,
मुख मोड़ा निष्ठुरवान हो गया,
मानव कितना........

कागज के टुकड़ों को बीना,
जहाँ भी देखा लूटा छीना,
यही उसका धर्म हो गया,
कर्मों से भी हीन हो गया।
मानव कितना........

नहीं सुरक्षित कहीं कोई भी
यात्रा भी अब कंटकीन है।
कहीं पे बम की, कहीं लूट की,
शंकित मन की बड़ी गूँज है,
जलधरती और हवा यात्रा में,
श्रेष्ठ कृतित्व का दर्प खो गया,
अजगर जैसा सर्प हो गया।
मानव कितना........

राष्ट्र नायक भी फिसल गए,
सुविधा के तल में उतर गए,
भूखे, नंगे, लाचारों की,
मृग-तृष्णा तो वहीं रही,
हर सेवक ने अपनी जेबों का,
काले धन से संधान किया,
खूंख्वार और शैतान हो गया,
मानव कितना........

फिर वोट माँगने निकल पड़े,
एक, एक जाति का नाम लिया,
धर्मों का अनुसंधान किया,
सबका यूँ काम तमाम किया,
यह कैसा पेट नहीं मालूम,
भर-भरकर भी अंजान हो गया।
मानव कितना........
मर्यादा के बंधन तोड़े,
लज्जा से भी नाता तोड़ा,
सृजन शील शक्ति नारी के,
आँचल को लहू-लुहान किया,
मानव कितना........
चाँदी के टुकड़ों पर सोकर
कभी किसी को ईश मिला है,
कलियाँ नौंची धरती रौंदी
और गरीबी रटना निशदिन,
तू कैसा नादन हो गया।
मानव कितना........
श्राद्ध किया श्रद्धा नहीं कोई,
माता-पिता को दे तिलांजली,
पत्नी-प्रेम ही श्रेय हो गया,
लाचार और दरबान हो गया।
मानव कितना........
मर कर भी कहता यही रहूँगा,
सड़-सड़ कर गंध उड़ाऊँगा,
सब मेरा है मैं हूँ सबका,
मैं छोड़ तुम्हें नहीं जाऊंगा,
चढ़ कंधे चार शमशान बढ़ गया,
चलते चलते अहसान कर गया॥
मानव कितना........

डूबती नाव

डूबती नहीं नाव दरिया में
जहाँ गहरा पानी होता है।
जहाँ पानी नहीं था,
पतवार भी थी,
दिल का दरिया लबालब था
नाव ऐसी डूबी कि डूब गया सब कुछ
स्वप्न साक्षात की भाँति
अन्तःस्थल को भिगो देती है याद
और स्वेद की किरणें
पलको से सरक सरक कर
सब कुछ बता देती हैं आज।

राजनीति

काँटे बिछा के तुमने,
फूलों का हार पहना।
फिर कैसे मान लें हम,
यह काम है हमारा।

तुम बो रहे थे काँटे,
अब पनप गया है पेड़।
हर गली के नुक्कड़ पर,
देखोगे शवों के ढेर।

जब भी कहीं मज़हब की,
दीवार खड़ी होती है।
हर गली के नुक्कड़ पर,
एक लाश पड़ी होती है।

कण-कण जलती मानवता,
तृण-तृण जलता देश।
वेद ज्ञान का सूर्य हरेगा,
इस जगत का क्लेश।

हृदय समुद्र

साहिल पे पहुँची नाव जब
पतवार भी खुद नाव है।
प्रेम के सागर में उतरी
और उतरती इस नाव को
आपके सदृश अभी
इस, नाव का ठहराव कैसा
चाँद तारे हैं श्वास और उच्छ्वास गवाह,
गतिशील हैं सब कुछ,
रुधिर भी रुकता कहाँ है
कतरा कतरा बहता
धमनियों और शिराओं में
मानो यही हो गंगा से कावेरी
तक का फैलाव।
हृदय कितना बड़ा है और गंभीर भी
प्रेम से सभी को सहलाता रहा है।

समुद्र मंथन

हमारा कुछ भी नहीं
सब ईश्वर का बनाया है
प्रयोजन कुछ भी नहीं था तो,
ईश्वर ने हमें किस लिए बनाया है।
प्रयोजन था वेद मार्गी बनो,
ब्रह्मचर्य और अध्ययन विद्या का करो,
कल्याण आत्मा का और देश का भी करना है
ऋषि ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त,
शिक्षा गलियों में नहीं,
गुरुकुल में मिलती थी,
बड़ी ही कठिन तपस्या थी,
जो सिर्फ तपस्वियों को ही मिलती थी।
कुछ सौ वर्षों पूर्व ही
शिक्षा में हुआ सरकारी दखल,
प्रजातंत्र को बीन बजाकर,
सत्ता के इन ठेकेदारों ने,
हर ली जन, सामान्य की अकल।
ऐसा हुआ शिक्षा का सरकारीकरण,
नेताओं ने कर लिया छात्रों का वरण।
शिक्षा के नाम पर,
राजनीति के दाव सिखाने लगे,
इन खिलौनों से खिलवाड़ करके,
अपना जीवन सफल बनाने लगे।
चल पड़ी होड़, शिक्षा को छोड़
एक अनुष्ठान रचाया है।

शिक्षा के लिए नहीं
छात्र ने नेता बनने के लिए ही
कॉलेज में नाम लिखाया है।
यह क्या कोई धर्मानुष्ठान है
नहीं ! यह तो मात्र
कुत्सित राजनीति का ही प्राण है।
कितना घिनौना खेल है यह,
शिक्षा के नाम पर नेताओं ने,
शतरंज का मोहरा बनाया है।
शतरंज !
अर्थात, सौ रंज, इस चादर पे बिखरे हैं।
ऋषियों ने समझाया था ! विद्यार्थी ?
विद्या का जिज्ञासु ही विद्यार्थी है।
लेकिन नेताओं की डिक्शनरी में तो
छात्रों के लिए
विद्या से विद्या की अर्थी बड़ी है।
किसी को हाथी, घोड़ा, ऊँट,
किसी को पैदल चलाया है।
किसी चमचे को लालच दे,
वजीर का ओहदा सजाया है।
स्वयं की ताजपोशी हो,
सभी को ज्ञान शून्य बनाया है।

एक दृश्य

चारों ओर खड़ी कारें, रक्षकों के झुंड हैं
चमचागीरी से ओत-प्रोत दीखते नरमुण्ड हैं।
फिर
क्या हुआ, कैसे हुआ कहाँ हुआ,
शोर माचाया है।

परन्तु नेता नाम की इस दीमक ने ही
छात्र और विद्या, दोनों को ही चाट खाया है।
अभिनव प्रयोग है
प्रजातंत्र और राजनीति में
दानव नेता ने, अपना पंख फैलाया है।
यदि पक्षी होता,
तो सेता अंडों को,
बच्चों को उड़ना सिखाता, प्यार सिखलाता,
किन्तु इसने तो अजगर बनकर
अंडों को ही चाट खाया है।
यह था, समुद्र मंथन
खुद अमृत चुराकर।
छात्रों को जहर पिलाया है।
नेताओं ने छात्रों को मोहरा बनाया है।

सद्भावना यात्रा

कई क्षेत्रों में हमने सद्भावना को अपनाया है
इतना ही नहीं
रिकार्ड तोड़ने और कायम करने का
रास्ता बताया है।
जनसंख्या वृद्धि का मंत्र
मजबूर और नाकाम जिसके सामने
सारी आस्थाओं के प्रश्न,
इक्कीसवीं सदी की ओर,
सद्भावना की दौड़,
सर्वोत्तम रिकार्ड बनाने की होड़,
एक ही प्रतिद्वंदी बचा है चीन
बर्थ कंट्रोल कर लेने के बाद
उसमें भी क्या धरा है।
यूँ तो मंहगाई कमर तोड़ बढ़ी है,
आबादी और मंहगाई
सगी बहनों की लड़ी है।
ऐसी आत्मा सात हो गई है दोनों,
पहचानना मुश्किल है,
कौन सी छोटी और कौन सी बड़ी है।
गरीबी रेखा के नीचे 35 करोड़,
थोड़ी सद्भावना और बढ़ानी है,
तीन और पांच को मरोड़
हो जाएंगे जब 53 करोड़
तभी जीत सकेंगे हम
सद्भावना की दौड़।

बड़ा ही आसान हो गया है अब,
लुटेरे देश में आ गए हो जब,
अक्षुण रखने के लिए आजादी,
इतिहास के पन्नों की याद बड़ी है।
आर्थिक सद्भावना से ही
गुलामी की नींव पड़ी है।
आयात और निर्यात
व्यापार के अंग
विदेशों में भारतीय, मांस की मांग बढ़ी है,
पशुओं की क्या जरूरत हमें,
उससे तो विदेशी मुद्रा बड़ी है।
इसी योजना में, मांस का निर्यात
और गोबर का आयात करेंगे।
वो दिन दूर नहीं,
जब जानवर नहीं बचेंगे,
एक कदम और बढ़ेंगे,
जनसंख्या, महँगाई कम करने को,
मनुष्यों और उनके अंगों का निर्यात करेंगे,
इसी प्रकार सद्भावना के सेतु बनेंगे।
सद्भावना की एक और कड़ी है।
हमारे देश में,
भ्रष्टाचारियों की फौज बढ़ी है।
हर रोज कोई नई बात होती है।
पिछले घोटालों को छोड़
अगले की बात होती है।
कभी हथियारों पर, कभी नोटों पर
कभी चीनी पर, सद्भावना की थाप पड़ती है।

रेल का सफर

एक स्थूल काय महिला
रेल में सफर कर रही थी।
एक नवजात शिशु
साथ में लिए थी।
बच्चे के बहाने
पूरी बर्थ पर कब्जा किए थी।
कहीं सामान कहीं कपड़े,
कहीं पानी की बोतल पड़ी थी।
देखने मे तो सभ्य थी
किन्तु असभ्यता की पिटारी बड़ी थी।
दो पुत्री तो पहले थी
तीसरी को निमंत्रण दिया।
परिवार नियोजन की सीमा का
कैसा सुन्दर अतिक्रमण किया।
बगल के कुछ लोग
आर.ए.सी. में सफर को बाध्य थे
कुछ लोग बिना आरक्षण, जिनके पास, पास थे
ताश खेलने की इच्छा,
और सिगरेट पीने को आजाद थे।
बहुत समझाया, समझ में न आया।
कण्डक्टर को बुलाया,
तब कहीं जाकर झगड़ा शान्त हो पाया।
बड़े ही विकट क्षणों में
रेल का सफर बिताया।

वाजपेयी सरकार

जय ललिता करती रही, बार बार फुंकार
करुण निधि सरकार का कर दो बंटा-धार।
वाजपेयी बोले करो, गठन जाँच दलसार,
अडवाणी भैया करे 356 से इन्कार।
दस दस कर बढ़ते गए, हो गए सो दिन पार,
फिर भी सिर पर लटक रही दोधारी तलवार।
दूत बने चैनई चले, अंतरंग जसवंत,
ज्यों-ज्यों दिल्ली लौटते, होत जात बदरंग।
अलाईन्स और दोस्ती की कायम करो मिसाल,
साथ जियेंगे, साथ मरेंगे, तभी गलेगी दाल।
प्रेम पुजारी बन जाओ हे अटल बिहार,
सरकार चलाओ बेखटके, अम्मा को दो पतवार।
लालू भैया देय दी, पत्नी को सरकार,
तुम भी भैया हमको दो, चैन्नई का अधिकार।
ऐसी कुछ करनी करो, वाजपेयी करतार,
कल काजग पै छाप दे, गई करुणा निधि सरकार।
बड़े हाथ उसके रहें, जिसकी हो सरकार,
करुणा निधि भी कर चले, भाजपा से प्यार।
अब तो और भी बढ़ चला, अम्मा का तकरार,
प्रमोद महाजन ने किया, उलट-पलट कर वार।
तोड़-फोड़ बिखरा दिया, तमिल दलों का हार,
अम्मा फिर से सोचती चलूँ कौन-सा वार।

एक और आश्चर्य

हुआ विषम आश्चर्य यहाँ तक
पैदा पहले पुत्र हो गया
पिता बसे परलोक
पैसा जन्मों का सूत्र हो गया
रिश्ते नाते प्यार बहारें
हृदय के अंगार हो गए
युगों का मौन निनादित हो
लाक्षागृह पांडव बन गए
किन्तु क्या होगी रचना
जब दुर्योधन-सा पुत्र हो गया
चाणक्य नहीं / चंद्रगुप्त नहीं
अब समय आ गया काला
मार गया है
सत्य अहिंसा और धर्म को पाला
शमशानी बैराग अब तो
धर्म सूत्र ही कर्म हो गया।

क्रांति

देश हमारा धरती अपनी
फिर भी हम कंगाल हैं।
बोझ है भारी, कर्जदार हम
क्योंकि, हम में कुछ शृंगाल हैं।
हे ईश्वर !
यह कैसा युग आया !
पूजा होनी थी जिनकी,
बम से उन्हें उड़ाया।
कैसी क्रांति देश में आई;
जुल्म सितम करने वाले
कुर्सी पर दिए दिखाई।

चन्द्र प्रिया

चन्द्रमा की सात किरणें,
पुँज बन उतरती रही,
सात शृंगारित यौवना,
धीरे-धीरे चलती रही।
ओस के कुछ कण किनारे,
केश प्रिया के होठ हिलकर,
नाद सा कुछ कर रहे थे।
फिर निनादित गुँजित धरा को
धीमे-धीमे, बुदबुदाते हिल रहे थे।

प्रसव

जब चढ़ता है भानु
प्रकाश और निखर जाता है।
जब आता है चाँद फिर
मधु सा घुल जाता है।
तपा-तपाकर देता कुन्दन फलों को
और चाँदनी रस भर देती
फिर होता मधु पान
प्रकृति करवट लेती।
इस काल चक्र की नैया में
प्रकृति करवट लेती रहती है
कभी भोर कभी साँझ वही फिर
मानव जीवन को बुन देती है।
मान सरोवर सा निर्मल
सरल हृदय हो जीव।
शरद की साँझ हो,
चाँद हो पूनम का
मान सरोवर में तैरते
हंसों को देख लगता है
मानो, प्रसव हो रहा स्वर्ग का।

सूर्योदय

बर्फ की सफेद चादर ओढ़े,
समस्त धवल प्रदेश,
उत्तुंग चोटी पर खड़ा,
एक मात्र चीड़ का पेड़।

वीरान में जीवन के,
लक्षणों का प्रतिबिम्ब,
गोरय्या का घोसला,
प्राणी जगत की जीवन्त कला।

तिनकों के ओट से झाँकती,
सूर्य की रश्मियाँ,
नूतन प्रभात का सूर्य,
नवजात चूजों को मिलती ऊष्मा।

यही है सूर्योदय का पराक्रम,
ईश्वर, जीव, प्रकृति की,
अनुपम जीवन्त कड़ी है।
आवागमन निरन्तर रहता,
भूत, वर्तमान, भविष्य।
सार्वभौम जीवन की,
इस पर नीव खड़ी है।

वसंतोत्सव

अलसाई आँखों से नभ ने,
अपना घूँघट खोला।
सूर्य प्रभा ने धरती तट पर,
आकर अमृत घोला।

अमराई की बौर सुगंधित,
मंद-मंद समिरि नदियाँ।
कुहुक-कुहुक स्वर लहरी से,
गुंजित होते बगिया आँगन।

बसंत घर-घर खुशी बाँटता,
प्रकृति ने बदला चोला।
पीली सरसों लाल टेसुओं ने
प्रकृति का रंग बोला।

गौर श्याम सब रंग बिरंगे
जूही, चम्पा, गुलाब, चमेली।
होली भी अब डगर-डगर में
रंग, अबीर गुलाल बिखराता।

मतवाली फूलों-सी काया में,
बालाओं का सौन्दर्य महकाता,
नवजीवन का संदेश लाया
वसन्तोत्सव आया।

सवेरा चाहिए

क्षितिज के पार भी कुछ और क्षितिज बाकी है,
दिन के बाद रात, रात के बाद दिन बहुत बाकी हैं।
जीवन और मृत्यु फिर जीवन बहुत बाकी है,
पथ भी बहुत है, पथिक और अभी बाकी हैं।
तिमिर के पार है रौशनी का सूरज
आशा और विश्वास है रौशनी के दूत
जब भी गहराने लगे अंधेरा
समझ लेना निकट नया सवेरा है।
धार के इस पार
या उस पार होना चाहिए
उस धार को मझधार का
रस राज होना चाहिए
रात्रि का पहला प्रहर भी हो चला अब
पक्षियों का चहचहाना भी हो गया बंद
अब तो नीरवता भी हो गई कलियों में बंद।
मन शान्त और कलांत भी,
मुझे फिर भी सरेवा चाहिए।

रत्न गर्भा

रत्न गर्भा है मेरी भूमाता
मात्र सोना नहीं जनती
इसे सोने की चिड़िया मत कहना
हमारी तो आदत रही ऐसी
आलस्य और सोते-रहना
चिड़िया की कल्पना की
फिर उसे पंख लगाए
उड़ना सिखलाया
सरहदों के रास्ते दिखलाये
चिड़िया-चिड़िया करते-करते
उड़ा ले गए धन सम्पत्ति
समय बीतता नहीं नींद खुली
हमारी बढ़ती गई विपत्ति
काट डालो पंख इसके
बना डालो हल और गैंती
खेत जोतेगी खान खोदेगी
चिड़िया नहीं, अन्न पूर्णा बनकर
संताप और गरीबी से उबारेगी।

बुज़ुर्गों की रौशनी

चन्द्रमा की रौशनी
मद्धिम कभी पड़ती नहीं है
यदा कदा साये बादलों के
ढक लेती हैं रौशनी उसकी
काल की करवट धरा पर
रौशनी के दायरे फिर
धरा को रंगीन करते हैं।
कुछ क्षणों के लिए
चाँद पर ओट आने से
हमने समझा छिप गया चाँद
कल वही चाँद फिर
कहीं और अपनी चाँदनी बिखेरेगा
फलों में रस भरेगा, फूलों में खुशबू
बच्चों का चन्दा मामा,
बड़ों का सहयोगी,
ऊँगली पकड़कर साथ चलकर
पाँव पर चलना और सम्भालना
सभी कुछ सिखायेगा।
कुछ पलों के बाद
चन्दा फिर निकल आएगा।

पंच तत्व का प्रयोग

बादशाहों के महलों के नीचे,
बहता पसीना देखा है।
तो तिल्लियाँ 'ज्वाला' जलाता है चूल्हा,
उसी अग्नि से अन्तिम संस्कार देखा है।

अग्नि ही प्राण, अग्नि ही दृष्य है जीवन का,
अग्नि के अभाव में मानव को,
तिल-तिल कर जलते देखा है।

जल ही जीवन है
नहीं कुछ भी बिना पानी
उसी से आती है बाढ़ और जल प्लावन
जब भी उठता ज्वार,
उसमें लाशों को बहते देखा है।

पेड़ सब कुछ देता ही देता
सब तोड़ते हैं फूल और फल
कुछ नोंच ले जाते हैं डालियाँ भी
शेष को समिधा बनाते देखा है।

जब भीमकाय होकर गिरता कभी
काल की त्रासदी बनकर दबा है।
यही वह वृक्ष था, नोंचा था जिसको,
काल को करवट बदलते देखा है।

उगलती धूँआ और जहर
ये ऊँची-ऊँची चिमनियाँ।
सभी ऐशो-आराम इनसे मिलता,
कभी कारबन-डाई-ऑक्साइड,
और मिथेन बनकर।
मनुष्य का कफन बनकर,
कहर ढाती हैं चिमनियाँ।
खुले आकाश में तारे गिनना
गिनना और भूल जाना
ये अच्छी एक आदत है।
जब गिरती हैं निहारिका, उल्कापिण्ड
यदा कदा कहीं न कहीं
इस त्रासदी को भोगा है
स्काई लैब का बिखर कर गिरना
आस्ट्रेलिया के तट पर खड़े
मनुष्य ने अपनी आँखों से देखा है।

विज्ञान अपने आपमें
स्वयं ही चमत्कार है
रोटी कपड़ा और मकान
तीनों की कमी से
त्रस्त होता संसार देखा है
लड़ाई झंझट, ईगो और पराई निन्दा में
व्यस्त यह संसार देखा है
मेरी मानो, कपास उगाओ, कातो सूत
अन्न उगाओ चलाओ चक्कियाँ
जंगल लगाओ काटो लकड़ियाँ
बनाकर घरोंदे, शक्ति संचय और कर लो
शब्द पढ़कर यूँ हृदय का परिचय दो
मूल मंत्र संसार का यही हो।

बरसात के दिन

सड़क के घाव को सहता रहा हूँ
हर हाल में जीवन को बदलता रहा हूँ
हड्डियाँ हिलती रही,
गन्तव्य की चाह पर
हर बार यूँही आगे बढ़ता रहा हूँ।
गाड़ियाँ रौंधती हैं हर सड़क को
हर पल, दिन रात,
कोई आराम न विराम,
मैं तो थककर बैठ जाता हूँ।
किन्तु सोचता हूँ ?
क्या हर व्यक्ति, एक साथ थकता है
नियति तो चाँद तारों
गृह नक्षत्रों की भी हैं।
कहीं आराम या विश्राम है क्या ?
मैं भी तो उसी प्रकृति भूत
का कण हूँ।
फिर क्यों थक जाता हूँ मैं ?
क्यों चाहिए विश्राम मुझे ?
फिर भी सत्य तो यही है,
थकता भी हूँ और विश्राम
भी चाहिए।
तभी तो समय के किनारे पर
अन्तहीन प्रकृति में विलीन
हो जाता हूँ।

बारिश के इन्हीं कणों से
हरित होती है धरा,
हर खेत को मिलता है पानी
धन उपजता है वृक्षों लताओं पर
जिसे घरों और गोदामों में
जाता है भरा।
भृष्टाचार के दलदल में भी
कमल जरूर खिलेंगे
विष्णु साबित हो जाओगे एक दिन तुम
भस्मासुर स्वयं मारे जाएंगे।

प्यार

प्यार की डोर तुम्हारे हाथ में है,
चाहो तो खींच-खींचकर तानो।

या फिर ढील दे देकर
और करीब आ जाओ।

दिल तो एक समन्दर है,
चाहे जहाँ और जितना डूब जाओ।

कश्ती तुम्हारे हाथ है,
डूब जाना या पार जाना है।

तुम तो मात्र अंग हो, उस प्रकृति का
जिससे उपजा यह जमाना है।

प्रभात

उगा रवि, किरणें बोली,
कलि खिलि, चिड़ियाँ बोली,
आया बसंत, खिलते दिगंत
सौरभ बिखरा, मदमस्त पवन
भौरों का गुंजन, डोल रहा मन
स्पंदन करता तन, गुन गुन मन
बढ़ चले अविरल धारा समान
क्षण एक ठहर मन करता है
करले स्मृति ताजा फिर
प्रभात का कर लें सम्मान।

नीम के पंख

नीम का एक पंख,
आ गिरा आँगन में औंधा,
अपलक निहरता शिर्ष पर,
क्या था मेरा अस्तित्व ?
क्या हो गया अब ?
पेड़ को कोई फर्क नहीं पड़ा,
हर वर्ष कितने ही पंख
हवा में लहराते विलखते,
धरा से आत्मसात करते।
किन्तु वृक्ष पर उगते फिर
नए पंख हर बार।

आषाढ़ की तपन

घटा टोप
बादलों की ओर
मैं निहारता वंदन करता
तपती धरती सूखी सरिता
महीना आषाढ़ का आया।
बरसो हे मेघा,
बरस, बरस मेरे आँगन की
तपन को शांत कराओ।
अब तक सत्तू से
तपन मिटी है।
कब तक यह तपन सहूँगा
हरित करो मलिन कांति को
आओ अब तो
तपन मिटाओ
हे मेघ ! आओ !
मेरे आँगन, मन, में
बरस बरस जाओ।
आषाढ़ की तपन मिटाओ।

यौवन

पत्तों के झुरमुट में,
किसी कली ने मुस्कराया है
लो ! आज फिर बसन्त आया है।
प्यार के दीप को जलाने से
ठण्डी फुहारों में यौवन आया है।

संदेश

नभ से तिमिर हटाने को
सूर्य रथ जब निकल पड़ा
दूर क्षितिज की पंखुड़ियों में
यौवन का संदेश मिला।

गुलाब

उगी हों नागफनियाँ
उन्हें फूलों से ढँक दो
जहर की गलियों में उगाकर गुलाब
उसे खुशबू से भर दो।

छाया

अपनी छाया को साथ ढोता हूँ,
मरने जीने की बात करता हूँ,
इस जीवन को मशाल बनालो दोस्तो
तम को हटाने की बात करता हूँ।

ईश्वर करे सुख से रहो तुम,
बाँट कर खाने की आदत डाल लो,
इकट्ठा करना तो सुख राम से सीखो,
पकड़े जाने से बचना हो तो,
बीमार होने की आदत डाल लों।

फूट

फूंट भयंकर बीमारी है
दुनिया से तुम कहते हो।
भारी अचरज है मुझको
आपस में फिर भी लड़ते हो।

गीत

चाँद भी है यहाँ और चाँदनी भी,
रौशनी का सूरज तो अभी चमकेगा।
तारे तभी टिम टिमाएंगे,
आप जब गीत गुनगुनाएंगे।

धन

धन साधन है साध्य नहीं
पड़ा यहीं रह जाएगा।
ऊँचे महल आटारी बंगले
साथ नहीं कुछ जाएगा।

नव वर्ष

शत् शत् वर्ष नव अभिनन्दन
सोने से हो मन के विचार ।।
हृदय हो जाए चन्दन।
दर्पण नहीं छोड़ेगा, चले जाओ कहीं भी
काश ! अपने मन को आईना बना लो तुम ।।
सोने सा हो शुद्ध मन
हृदय हो जाए चन्दन।

ओस

धरती पीती इस अमृत को,
और उगलती सोना,
कोई कहता आसमाँ रोता,
कहता कोई पसीना है।
यही क्या जादू से कम है,
रजस्वला भूमि भारत की,
पीती पानी जनती सोना।

नाव

जब भी कोई नाव,
किनारे की ओर बढ़ती है।
बीच मझधार उससे कहती है,
तुझे हर बार मुझसे मिलना होगा
यही नियती, हम दोनों की साझी है।

स्वप्न

हमने राई को पर्वत
पर्वत को राई देखा है
सपने में
जीवन के बुलबुले को
अमराइयों में देखा है।

देश

मैंने
इस देश का एक चित्र खींचा है,
गगन चुम्बी अट्टालिकाओं से सीखा है,
नजर ऊपर उठाकर देखते रहना,
गरीब और गरीबी में पलना
भाई-बहनों का सलीका है।